



प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय बिलासपुर

दाण्डिक पुनरीक्षण सं 561/2015

महेश कुमार शर्मा पिता रामानंद शर्मा , 53 वर्ष, निवासी आवास संख्या 183, जवाहर नगर, दुर्ग, पुलिस थाना मोहन नगर, दुर्ग, तहसील तथा जिला दुर्ग छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़

-----आवेदक
अभियुक्त

बनाम

राजकुमार शर्मा पिता स्वर्गीय मोहनलाल शर्मा, 58 वर्ष निवासी नई दीपक नगर, राम मंदिर, होटल वाणी के पीछे, पुलिस थाना मोहन नगर, दुर्ग, तहसील तथा जिला दुर्ग छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़

-----अनावेदक
परिवादी

[वाद कारण प्रकरण सूचना प्रणाली (सी. आई. एस.) से लिया गया है]

आवेदक हेतु : सुश्री फौजिया मिर्जा, वरिष्ठ अधिवक्ता तथा श्री शम्सुद्दीन मिर्जा, अधिवक्ता

अनावेदक हेतु : श्री प्रियंका राय, अधिवक्ता

न्यायमित्र: श्री राहुल तमस्कर, अधिवक्ता

एकल पीठ: माननीय श्री संजय के. अग्रवाल, न्यायाधीश

पीठ पर आदेश

21.02.2025

1. दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "दं. प्र. सं. ") की धारा 401 के साथ धारा 397 के तहत दायर इस दाण्डिक पुनरीक्षण में शामिल संक्षिप्त प्रश्न है:--



“क्या अपीलीय न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(3) के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार है, ऐसे मामले में जहां जुर्माना दंड का हिस्सा है और इसे दाण्डिक न्यायालय द्वारा विधिवत रूप से प्रदान किया गया है?”

2. निम्नलिखित तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर विचार के लिए उठने वाला उपरोक्त विधि का प्रश्न:

2.1 आवेदक/अभियुक्त ने अनावेदक/परिवादी से 1,60,000/- रुपये का ऋण प्राप्त किया और जिसके विरुद्ध उसने अनावेदक/परिवादी को 25.04.2006 को चेक संख्या 202836 दिनांक 10.05.2006 जारी किया। उक्त चेक 05.05.2006 को निधियों की अपर्याप्तता के कारण अस्वीकृत हो गया और जिसके कारण अनावेदक/परिवादी ने सबसे पहले आवेदक/अभियुक्त को 25.05.2006 को कानूनी नोटिस दिया और अंततः उसने 28.06.2006 को क्षेत्राधिकार वाले दाण्डिक न्यायालय के समक्ष परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (संक्षेप में “एनआई अधिनियम”) की धारा 138 के अंतर्गत दाण्डिक परिवाद दर्ज कराई।

2.2. दाण्डिक न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 28.06.2013 द्वारा आवेदक/अभियुक्त को एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया और उसे 5,000/- रुपये के जुर्माने के साथ 06 महीने के साधारण कारावास का दंड पारित किया गया और जुर्माना राशि का भुगतान न करने पर 01 महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास का दंड पारित किया गया। व्यथित महसूस करते हुए, आवेदक/अभियुक्त ने दं. प्र. सं. की धारा 386 के तहत अपीलीय न्यायालय के समक्ष दिनांक 28.06.2013 के दोषसिद्धि और दंड के निर्णय के विरुद्ध अपील दायर की। अपीलीय न्यायालय ने, दिनांक 02.05.2015 के आक्षेपित आदेश (अनुलग्नक-ए/1) के तहत, एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत आवेदक/अभियुक्त की दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए, दाण्डिक न्यायालय द्वारा आवेदक/अभियुक्त को दिए गए 06 महीने के एसआई और 5,000/- रुपये के जुर्माने के साथ-साथ चूक की शर्त को खारिज कर दिया और उसे न्यायालय उठने तक की दंड पारित किया गया, साथ ही निर्देश दिया कि वह 60 दिनों के भीतर अनावेदक/परिवादी को 2,56,000/- रुपये (अर्थात चेक की राशि ब्याज सहित) का क्षतिपूर्ति दे दिनांक 02.05.2015 के उक्त आक्षेपित आदेश (अनुलग्नक-ए/1) की वैधानिकता, वैधता और शुद्धता पर आपत्ति करते हुए, आवेदक/अभियुक्त ने इस न्यायालय के समक्ष यह दाण्डिक पुनरीक्षण दायर किया है, जिसमें आक्षेपित आदेश को इस सीमा तक चुनौती दी गई है कि अनावेदक/परिवादी को क्षतिपूर्ति देने का निर्देश अधिकार क्षेत्र और विधि के प्राधिकार के बिना है।

3. आवेदक/अभियुक्त की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री फौजिया मिर्जा ने प्रस्तुत किया कि दाण्डिक न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और दंड के आदेश के खिलाफ आवेदक/अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत अपील में, विद्वान अपीलीय न्यायालय ने अनावेदक/परिवादी को क्षतिपूर्ति की बढ़ी हुई राशि का भुगतान करने का निर्देश देते समय गंभीर विधिक त्रुटि की है, क्योंकि दं. प्र. सं. की धारा 386 (बी) (iii) अपीलीय न्यायालय को केवल दंड की प्रकृति या सीमा, या प्रकृति और सीमा को बदलने का अधिकार देती है, लेकिन दंड को



बढ़ाने का नहीं। उन्होंने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 की उपधारा (3) के आधार पर, हालांकि अपीलीय न्यायालय क्षतिपूर्ति देने में अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है, लेकिन चूंकि वर्तमान मामले में आवेदक/अभियुक्त पर दाण्डिक न्यायालय द्वारा 5,000/- रुपये का जुर्माना पहले ही लगाया जा चुका है, इसलिए अपीलीय न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(3) के साथ 386(बी) (iii) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को अपास्त किये जाने योग्य है।

4. श्री प्रियंका राय, अनावेदक/परिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और प्रस्तुत किया कि अपीलीय न्यायालय ने जुर्माना देने के आदेश को अपास्त कर दिया है और जुर्माना न होने की स्थिति में एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत निहित प्रावधानों पर विचार करते हुए और चेक अनादर के मामलों में चेक की राशि वापस करने के उद्देश्य पर विचार करते हुए न्याय के हित में आवेदक/अभियुक्त को अनावेदक को ब्याज सहित चेक की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया है, जो पूरी तरह विधि के अनुसार है। अतः, वर्तमान पुनरीक्षण खारिज किए जाने योग्य है।

5. विद्वान न्यायमित्र श्री राहुल तामस्कर भी इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं कि जब दंड न्यायालय द्वारा जुर्माना लगाया जा चुका है और परिवादी ने क्षतिपूर्ति की मांग करते हुए या उक्त जुर्माने में वृद्धि के लिए अपील दायर करके इसे चुनौती नहीं देने का विकल्प चुना है, तो अभियुक्त द्वारा अपनी दोषसिद्धि और दंड के खिलाफ दायर अपील में, अपीलीय न्यायालय, सीआरपीसी की धारा 386(बी)(iii) में निहित स्पष्ट प्रावधान के तहत, परिवादी को क्षतिपूर्ति नहीं दे सकता था क्योंकि क्षतिपूर्ति जुर्माने की राशि से दिया जाना है। इसलिए, दिनांक 02.05.2015 (अनुलग्नक-ए/1) का आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है, उनके ऊपर दिए गए प्रतिद्वन्द्वी निवेदनों पर विचार किया है तथा अभिलेख का अत्यंत सावधानी से अध्ययन किया है।

7. यह विवाद का विषय नहीं है कि दाण्डिक न्यायालय ने आवेदक को 06 माह के कारावास का दंड पारित करते हुये 5,000/- रुपए के जुर्माने की भी दंड पारित किया है तथा जुर्माने की राशि में से कोई क्षतिपूर्ति नहीं दिया गया है तथा केवल अभियुक्त/आवेदक ही है, जिसने कारावास तथा जुर्माने की अपने दंड पर प्रश्न उठाते हुए अपील प्रस्तुत करना चुना है, जबकि परिवादी ने जुर्माने की दंड में वृद्धि तथा उक्त जुर्माने के दंड में से क्षतिपूर्ति देने की मांग करते हुए कोई अपील प्रस्तुत करना नहीं चुना है।

8. बार में उठाई गई याचिका का जवाब देने के लिए, एन. आई. अधिनियम की धारा 138 पर ध्यान देना यहां सबसे पहले सुसंगत होगा, जो इस प्रकार है:-----

"138. खाते में धन की अपर्याप्तता आदि हेतु चेक का अनादर।



जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी बैंक में अपने द्वारा खोले गए खाते पर किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के भुगतान के लिए निकाला गया कोई चेक बैंक द्वारा बिना भुगतान के वापस कर दिया जाता है, या तो इसलिए कि उस खाते में जमा धनराशि चेक का सम्मान करने के लिए अपर्याप्त है या यह उस बैंक के साथ किए गए करार द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली धनराशि से अधिक है, तो ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है और वह इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो चेक की धनराशि का दुगुना हो सकेगा, या दोनों से, दंडित किया जाएगा:

परंतु कि इस धारा में निहित कुछ भी तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि—

(क) चेक बैंक में उस तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर प्रस्तुत नहीं किया जाता है, जिस दिन इसे निकाला जाता है या इसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो;

(ख) चेक के आदाता या धारक, जैसा भी मामला हो, लिखित रूप में चेक के लेखक को एक नोटिस देकर उक्त धनराशि के भुगतान की मांग करता है, [चेक के अवैतनिक रूप से वापस आने के बारे में बैंक से उसके द्वारा सूचना प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर;

और (ग) ऐसे चेक का लेखक, उक्त नोटिस की प्राप्ति के पंद्रह दिनों के भीतर, चेक के आदाता या धारक को उक्त धनराशि का भुगतान करने में विफल रहता है।

स्पष्टीकरण— —इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "ऋण या अन्य दायित्व" का अर्थ है विधिक रूप से लागू करने योग्य ऋण या अन्य दायित्व।"

9. एनआई अधिनियम की धारा 138 के अनुसार, यदि अभियुक्त दोषी पाया जाता है तो आपराधिक न्यायालय को चेक की राशि का दोगुना देने का अधिकार है। जबकि, दं. प्र. सं. की धारा 357 को लागू करके जुर्माने से क्षतिपूर्ति दिया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"357. क्षतिपूर्ति देने का आदेश।---

(1) जब न्यायालय जुर्माने का दण्डादेश या ऐसा दण्डादेश (जिसमें मृत्यु दण्डादेश भी शामिल है) अधिरोपित करता है, जिसका जुर्माना भाग है, तो न्यायालय निर्णय पारित करते समय वसूले गए जुर्माने का पूरा या उसका कोई भाग लागू करने का आदेश दे सकता है—

(क) अभियोजन में उचित रूप से उपगत व्ययों को चुकाने में;

(ख) किसी व्यक्ति को अपराध के कारण हुई किसी हानि या चोट के लिए प्रतिकर के भुगतान में, जब न्यायालय की राय में प्रतिकर ऐसे व्यक्ति द्वारा सिविल न्यायालय में वसूल किया जा सकता है;



(ग) जब किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित करने या ऐसे अपराध के लिए उकसाने के लिए किसी अपराध का दोषी ठहराया जाता है, तो ऐसे व्यक्तियों को प्रतिकर देने में, जो घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 (1855 का 13) के अधीन, ऐसी मृत्यु से हुई हानि के लिए दण्डित व्यक्ति से क्षतिपूर्ति वसूलने के हकदार हैं;

(घ) जब किसी व्यक्ति को किसी ऐसे अपराध का दोषी ठहराया जाता है, जिसमें चोरी, आपराधिक दुर्विनियोजन, आपराधिक विश्वासघात या धोखाधड़ी, या बेईमानी से चोरी की गई संपत्ति प्राप्त करने या रखने, या चोरी की गई संपत्ति के निपटान में स्वेच्छा से सहायता करने का अपराध सम्मिलित है, यह जानते हुए या यह विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह चोरी की गई है, ऐसी संपत्ति के किसी वास्तविक क्रेता को उस संपत्ति की हानि के लिए प्रतिकर देने में, यदि ऐसी संपत्ति उस व्यक्ति के कब्जे में लौटा दी जाती है, जो उसका हकदार है।

(2) यदि जुर्माना ऐसे मामले में लगाया गया है जो अपील के अधीन है, तो अपील प्रस्तुत करने के लिए दी गई अवधि बीत जाने से पहले या यदि अपील प्रस्तुत की गई है, तो अपील के निर्णय से पहले ऐसा कोई भुगतान नहीं किया जाएगा।

(3) जब कोई न्यायालय ऐसा दण्ड लगाता है, जिसका जुर्माना भाग नहीं बनता है, तो न्यायालय निर्णय पारित करते समय अभियुक्त व्यक्ति को आदेश दे सकता है कि वह उस व्यक्ति को प्रतिकर के रूप में ऐसी राशि का भुगतान करे, जो आदेश में निर्दिष्ट की जा सकती है, जिसने उस कार्य के कारण कोई हानि या चोट उठाई है जिसके लिए अभियुक्त व्यक्ति को ऐसा दण्ड दिया गया है।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है, जब वह अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो।

(5) उसी मामले से संबंधित किसी पश्चातवर्ती सिविल वाद में प्रतिकर अधिनिर्णीत करते समय न्यायालय इस धारा के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त या वसूल की गई किसी राशि को ध्यान में रखेगा।"

10. धारा 357 सी.आर.पी.सी. की उपधारा (3) का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यह पता चलता है कि जब न्यायालय कोई दण्ड लगाता है, जिसका अर्थदण्ड शामिल नहीं है, तो न्यायालय निर्णय पारित करते समय/अभियुक्त को आदेश दे सकता है कि वह आदेश में विनिर्दिष्ट राशि उस व्यक्ति को प्रतिकर के रूप में दे, जिसे उस कार्य के कारण कोई हानि या चोट पहुंची है, जिसके लिए अभियुक्त को दण्डित किया गया है। दं. प्र. सं. की धारा 357 की उपधारा (1) आपराधिक न्यायालय को जुर्माना राशि का आंशिक या पूरा हिस्सा उस व्यक्ति को देने का आदेश देने का अधिकार देती है जिसने नुकसान उठाया है और इसी तरह की शक्ति दं. प्र. सं. की धारा 357 की उपधारा (4) के आधार पर पुनरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायालय या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को प्रदान की गई है। हालाँकि, सीआरपीसी की धारा



357(4) के तहत अपीलीय न्यायालय की शक्ति निस्संदेह दं. प्र. सं. की धारा 386(बी)(iii) के अधीन है, जो इस प्रकार है:

"386. अपील न्यायालय की शक्तियां—

ऐसे अभिलेख का अवलोकन करने और अपीलार्थी या उसके वकील को, यदि वह उपस्थित होता है, और लोक अभियोजक को, यदि वह उपस्थित होता है, और धारा 377 या धारा 378 के अधीन अपील की स्थिति में, अभियुक्त को, यदि वह उपस्थित होता है, सुनने के पश्चात, अपील न्यायालय, यदि वह समझता है कि हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, अपील को खारिज कर सकता है, या

(अ) XXXX

(ख) दोषसिद्धि की अपील में

(i) XXX

(ii) XXX

(iii) निष्कर्ष को बदलने के साथ या उसके बिना, सजा की प्रकृति या सीमा, या प्रकृति और सीमा को बदल सकता है, लेकिन उसे बढ़ाने के लिए नहीं; "

11. इस प्रकार, उपर्युक्त उद्धृत प्रावधान से यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय, सीआरपीसी की धारा 386 (बी) (iii) के तहत शक्ति के प्रयोग में, निष्कर्ष को बदलने के साथ या उसके बिना, सजा की प्रकृति या सीमा, या प्रकृति और सीमा को बदल सकता है, लेकिन उसे बढ़ा नहीं सकता है।

12. इस संबंध में, शिवसूर्यन बनाम थंगावेलु 1 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर ध्यान दिया जा सकता है, जिसमें, उनके माननीय न्यायाधीशों ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या न्यायालय सीआरपीसी की धारा 357 की उपधारा (3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए मुआवजे के भुगतान का निर्देश दे सकता है, ऐसे मामले में जहां जुर्माना पहले से ही सजा का हिस्सा है, यह माना है कि सीआरपीसी की धारा 357 (3) के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब न्यायालय सजा लगाता है, जो जुर्माना उसका हिस्सा नहीं है और कंडिका-04 और 05 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है:

"4. प्रस्तुत किए गए निवेदन के तहत, विचारणीय एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या न्यायालय धारा 357 की उपधारा (3) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसे मामले में प्रतिकर के भुगतान का निर्देश दे सकता है, जहां जुर्माना पहले से ही दंड का हिस्सा है। धारा 357 की उपधारा (3) के अलावा संहिता के अधीन कोई अन्य प्रावधान नहीं है, जिसके तहत न्यायालय ऐसी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। धारा 357 की उपधारा (3): जब न्यायालय कोई ऐसा दंड पारित करता है, जिसका जुर्माना हिस्सा नहीं है, तो न्यायालय, निर्णय पारित करते समय, अभियुक्त व्यक्ति को आदेश में निर्दिष्ट राशि प्रतिकर के रूप में उस व्यक्ति को देने का आदेश



दे सकता है, जिसे उस कार्य के कारण कोई हानि या चोट पहुंची है, जिसके लिए अभियुक्त व्यक्ति को ऐसा दंड पारित किया गया है।

5. उपर्युक्त प्रावधान को सरलता से पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब न्यायालय ऐसा दण्ड दे, जिसमें जुर्माना शामिल न हो।

इस मामले में, न्यायालय ने कारावास तथा जुर्माने का दंड पारित किया गया है, अतः धारा 357 की उपधारा (3) के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इस मामले को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता को एक लाख रुपये की क्षतिपूर्ति देने का निर्देश देने संबंधी आक्षेपित निर्देश को अपास्त किया जाता है।"

13. आर. विजयन बनाम बेबी 2 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब राज्य बनाम गुरमेज सिंह 3 और शिवसूरियान (सुप्रा) में अपने पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए कहा है कि जहां दी गई सजा में जुर्माना शामिल नहीं है और जहां दंड केवल कारावास से संबंधित है, न्यायालय निर्णय पारित करते समय अभियुक्त को आदेश में निर्दिष्ट राशि के मुआवजे के रूप में भुगतान करने का निर्देश दे सकता है, जिसने पहले ही उस कार्य के कारण हानि या चोट उठाई है, जिसके लिए अभियुक्त को ऐसा दंड पारित किया गया है और कंडिका-09 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है:

"9. संहिता की धारा 357 की उपधारा (3) से यह स्पष्ट है कि जहां अधिरोपित दण्ड में जुर्माना सम्मिलित नहीं है, अर्थात् जहां दण्ड केवल कारावास से सम्बन्धित है, वहां न्यायालय निर्णय पारित करते समय अभियुक्त को आदेश में विनिर्दिष्ट राशि प्रतिकर के रूप में उस व्यक्ति को देने का निर्देश दे सकता है, जिसे उस कार्य के कारण कोई हानि या चोट पहुंची है जिसके लिए अभियुक्त को ऐसा दंड पारित किया गया है। इसका कारण स्पष्ट है। धारा 357 की उपधारा (1) में यह प्रावधान है कि जहां न्यायालय जुर्माने की सजा या ऐसी सजा अधिरोपित करता है, जिसका एक भाग जुर्माना है, वहां न्यायालय जुर्माने की राशि को किसी व्यक्ति को अपराध के कारण हुई हानि या चोट के लिए प्रतिकर के भुगतान में उपयोग करने का निर्देश दे सकता है, जब प्रतिकर न्यायालय की राय में ऐसे व्यक्ति द्वारा सिविल न्यायालय में वसूल किया जा सकता है। इस प्रकार, यदि जुर्माने से क्षतिपूर्ति दिया जा सकता है, तो अलग से क्षतिपूर्ति देने की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल जहां दंड में जुर्माना शामिल नहीं है, बल्कि केवल कारावास है और न्यायालय को ज्ञात होता है कि अभियुक्त के कृत्य के कारण जिस व्यक्ति को कोई नुकसान या चोट पहुंची है, उसे क्षतिपूर्ति दिया जाना चाहिए, तो धारा 357 (3) के तहत क्षतिपूर्ति के तहत क्षतिपूर्ति देने की अनुमति है।"

14. उपरोक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा निर्धारित विधि के सिद्धांतों के प्रकाश में वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करने पर यह स्पष्ट है कि इस मामले में दण्डिक न्यायालय ने आवेदक/अभियुक्त को एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराते हुए न केवल उसे 6 महीने के साधारण कारावास की दंड पारित किया गया, बल्कि 5,000/- रुपये के जुर्माने की भी दंड



पारित किया गया। हालांकि दाण्डिक न्यायालय ने आवेदक/अभियुक्त को दोषी ठहराने और दंड पारित करने के निर्णय देते समय जुर्माने की राशि में से अनावेदक/परिवादी को किसी भी प्रकार का क्षतिपूर्ति देने का निर्देश नहीं दिया, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(3) के तहत स्पष्ट प्रतिबंध के तहत अपीलीय न्यायालय के लिए क्षतिपूर्ति देने का विकल्प नहीं था, क्योंकि क्षतिपूर्ति केवल तभी दिया जा सकता है, जब लगाये गये दंड में जुर्माना शामिल न हो, जो कि यहां मामला नहीं है। इस प्रकार, वर्तमान मामले में अपीलीय न्यायालय द्वारा क्षतिपूर्ति देने का निर्णय स्पष्ट रूप से सीआरपीसी की धारा 386(बी)(iii) के साथ धारा 357(3) के तहत निहित स्पष्ट प्रतिबंध के विरुद्ध है। अपीलीय न्यायालय ने मामले के उक्त पहलू पर ध्यान नहीं दिया और पक्षों के बीच संबंधों को बहुत करीबी मानते हुए तथा पक्षों के बीच लेन-देन पर विचार करते हुए मुआवज़ा देने की कार्यवाही की। इतना ही नहीं, **कलमनी टेक्स एवं अन्य बनाम पी. बालसुब्रमण्यम 4** के मामले में अभियुक्त द्वारा की गई अपील में, प्रतिवादी की क्षतिपूर्ति की मांग संबंधी याचिका पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने उच्च न्यायालय के फैसले को स्वीकार करते हुए कंडिका-20 में स्पष्ट रूप से कहा था कि अपील न करने से क्षतिपूर्ति का दावा निहित रूप से निरस्त हो जाता है।

15. चूंकि, वर्तमान मामले में, दाण्डिक न्यायालय ने जानबूझकर 5,000/- रुपये का जुर्माना लगाया है और कोई क्षतिपूर्ति देने का आदेश नहीं दिया गया है, यहां आवेदक/अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत अपील में, सीआरपीसी की धारा 386(बी)(iii) के साथ धारा 357(3) के तहत निहित प्रावधानों के तहत, अपीलीय न्यायालय के पास अनावेदक/परिवादी द्वारा विधिवत गठित अपील की अनुपस्थिति में क्षतिपूर्ति का आदेश देते हुए जुर्माना का दंड बढ़ाने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है क्योंकि क्षतिपूर्ति एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत एक स्वतंत्र घटक नहीं है जो एक विशेष अधिनियम है और इसे जुर्माना राशि का हिस्सा होना चाहिए और जुर्माना सजा का हिस्सा होना चाहिए। इस प्रकार, अपीलीय न्यायालय का दिनांक 02.05.2015 का आदेश (अनुलग्नक-ए/1), जिसमें आवेदक/अभियुक्त द्वारा अनावेदक/परिवादी को 2,56,000/- रुपए का क्षतिपूर्ति देने का आदेश दिया गया है, क्षेत्राधिकार और विधि के अधिकार के बिना है और इसलिए इसे अपास्त किये जाने योग्य है।

16. परिणामस्वरूप, पूर्वोक्त चर्चा के तहत, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 02.05.2015 (अनुलग्नक-ए/1) का आक्षेपित आदेश, जिसके तहत आवेदक/अभियुक्त द्वारा अनावेदक/परिवादी को 2,56,000/- रुपए का क्षतिपूर्ति देने का निर्देश दिया गया था, को एतद्वारा अपास्त किया जाता है। हालांकि, इससे अनावेदक/परिवादी को आवेदक/अभियुक्त से विधि के अनुसार उक्त राशि वसूलने से नहीं रोका जाएगा।

17. परिणामस्वरूप, इस दाण्डिक पुनरीक्षण को ऊपर बताई गई विस्तार तक अनुमति दी जाती है।



18. अभिलेख से विदा लेते समय, मुझे श्री राहुल तामस्कर, विद्वान न्यायमित्र द्वारा प्रदान की गई सहायता के लिए आभार व्यक्त करना चाहिए, जिन्होंने न केवल अल्प सूचना पर मामले पर विस्तार से बहस की, बल्कि सुसंगत तथ्यों और विधिक स्थिति को भी मेरे ध्यान में लाया है।

सही/-
(संजय के. अग्रवाल)
न्यायाधीश



(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक



*प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और
कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*

